॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

1360▲

तू-ही-तू

गीताप्रेस, गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR (SINCE 1923)

स्वामी रामसुखदास

1360

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

तू-ही-तू

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

तू-ही-तू

(१)

उपनिषद्में आता है कि आरम्भमें एकमात्र अद्वितीय सत् ही विद्यमान था—'**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**' (छान्दोग्य० ६ । २ । १) । वह एक ही सत्स्वरूप परमात्मतत्त्व एकसे अनेकरूप हो गया—

(१) **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(छान्दोग्य० ६ । २ । ३)

(२) **सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(तैत्तिरीय० २ । ६)

(३) **एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।** (कठ० २ । २ । १२)

एकसे अनेक होनेपर भी वह एक ही रहा,

उसमें नानात्व नहीं आया—

(१) **'नेह नानास्ति किञ्चन'**

(बृहदारण्यक० ४। ४। १९, कठ० २। १। ११)

(२) **'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति'**

(गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद्)

(३) **'यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म'**

(बृहदारण्यक० ३। ४। १)

(४) **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**

(छान्दोग्य० ३। १४। १)

(५) **'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदम्'**

(मुण्डक० २। २। ११)

इसलिये श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

(२। ९। ३२)

'सृष्टिके पहले भी मैं ही था, मुझसे भिन्न कुछ

भी नहीं था। सृष्टिके उत्पन्न होनेके बाद जो कुछ भी यह दृश्यवर्ग है, वह मैं ही हूँ। जो सत्, असत् और उससे परे है, वह सब मैं ही हूँ। सृष्टिके बाद भी मैं ही हूँ और इन सबका नाश हो जानेपर जो कुछ बाकी रहता है, वह भी मैं ही हूँ।'

गीतामें भी भगवान्‌ने कहा है—

(१) **अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥**

(१०।२०)

'सम्पूर्ण प्राणियोंके आदिमें भी मैं ही हूँ, मध्यमें भी मैं ही हूँ और अन्तमें भी मैं ही हूँ।'

(२) **सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।**

(१०।३२)

'सम्पूर्ण सृष्टियोंके आदिमें भी मैं ही हूँ, मध्यमें भी मैं ही हूँ और अन्तमें भी मैं ही हूँ।'

(३) '**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति**'

(७।७)

'मेरे सिवाय इस जगत्‌का दूसरा कोई किंचिन्मात्र

भी कारण तथा कार्य नहीं है।'

(४) '**वासुदेवः सर्वम्**' (७। १९)

'सब कुछ परमात्मा ही हैं।'

(५) '**सदसच्चाहमर्जुन**' (९। १९)

'सत् और असत् भी मैं ही हूँ।'

(६) **न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥** (१०। ३९)

'वह चर-अचर कोई प्राणी नहीं है, जो मेरे बिना हो अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

सन्तोंने भी अपना अनुभव बताते हुए कहा है—

(१) **तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।**
वारी फेरी बलि गई, जित देखूँ तित तू॥

(२) **सब जग ईश्वर-रूप है, भलो बुरो नहिं कोय।**
जैसी जाकी भावना, तैसो ही फल होय॥

(३) **सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।**
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(मानस, किष्किंधा० ३)

(४) निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस, उत्तर० ११२ ख)

(५) जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।

(मानस, बाल० ७ ग)

(२)

गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं—अपरा और परा। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—यह आठ प्रकारके भेदोंवाली भगवान्‌की 'अपरा प्रकृति' है और जीवरूप बनी हुई आत्मा 'परा प्रकृति' है।* अपरा और परा—ये दोनों भगवान्‌की प्रकृतियाँ अर्थात् शक्तियाँ हैं। शक्तिमान्‌के बिना शक्तिकी

---

* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७। ४-५)

स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। इसलिये भगवानकी शक्ति होनेसे ये दोनों (अपरा और परा) भगवान्से अभिन्न हैं। जैसे मनुष्य अपनी शक्ति (ताकत)-को अपनेसे अलग करके नहीं दिखा सकता, ऐसे ही अपरा और पराको भगवान्से अलग करके नहीं देखा जा सकता। तात्पर्य यह निकला कि अपरा और परा—दोनों प्रकृतियाँ भगवान्से अभिन्न होनेके कारण भगवान्का स्वरूप ही हैं।

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तीन लोक, चौदह भुवन, जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, थलचर-जलचर-नभचर, जरायुज-अण्डज-स्वेदज-उद्भिज्ज, सात्त्विक-राजस-तामस, मनुष्य, देवता, पितर, गन्धर्व, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, भूत-प्रेत-पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि जो कुछ भी देखने, सुनने, पढ़ने, चिन्तन करने तथा कल्पना करनेमें आता है, उसमें 'अपरा' और 'परा'—इन दो प्रकृतियोंके सिवाय कुछ भी नहीं है। जो देखने, सुनने, पढ़ने, चिन्तन करने तथा

कल्पना करनेमें आता है और जिन शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-अहम्‌के द्वारा देखा, सुना, पढ़ा, चिन्तन किया तथा कल्पना किया जाता है, वह सब-का-सब 'अपरा' है। परन्तु जो देखता, सुनता, पढ़ता, चिन्तन करता तथा कल्पना करता है, वह 'परा' है। जितने भी शरीर हैं, वे सब-के-सब 'अपरा' के अन्तर्गत हैं और जितने भी जीव हैं, वे सब-के-सब 'परा' के अन्तर्गत हैं। अतः अनन्त ब्रह्माण्डोंके भीतर तथा बाहर और अनन्त ब्रह्माण्डोंके रूपमें आठ अपरा, एक परा और एक भगवान्—इन दसके सिवाय कुछ नहीं है अर्थात् एक भगवान्‌के सिवाय किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं है।

अपरा प्रकृतिको मैं, मेरा और मेरे लिये माननेसे ही जीवको अपरा (जगत्), परा (जीव) और परमात्मा—तीनों अलग-अलग दिखायी देते हैं। वास्तवमें परमात्मा ही हैं, प्रकृति है ही नहीं। प्रकृतिकी तरफ दृष्टि होनेसे ही प्रकृति है। दृष्टि

न हो तो प्रकृति है ही नहीं। द्रष्टा भी दृश्यके सम्बन्धसे है। साक्षी भी साक्ष्यके सम्बन्धसे है। जब हम अपनेको शरीर मानते हैं, तब भगवान् हमारे लिये संसार बन जाते हैं अर्थात् हमें संसार-रूपसे दीखने लगते हैं। जब अपरा और परा—दोनों प्रकृतियाँ भगवान्‌की हैं तो फिर उसमें मैं-तूका भेद कैसे हो सकता है?

अगर हम अपनेको देखें तो अपरा और पराके सिवाय हम कुछ नहीं हैं। हमारे शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहम्—ये सब अपरा हैं और हम स्वयं जीवरूपसे परा हैं। परा-अपरा दोनों भगवान्‌की प्रकृतियाँ हैं; अतः केवल भगवान् ही रहे! हमारी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रही! 'मैं' नामसे कुछ नहीं रहा!

प्रकृति और प्रकृतिवाला (शक्ति और शक्तिमान्) एक होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी एक हैं। एक ही अनेकरूपसे दीखता है और अनेकरूपसे दीखते हुए भी वह एक है। भगवान् कहते हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि) ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार कर लें।'

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः॥

(श्रीमद्भा० ११। २८। ६)

'जो कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वस्तु है, वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही हैं। वे परमात्मा ही विश्व बनाते हैं और वे ही विश्व बनते हैं। वे ही विश्वके रक्षक हैं और वे ही रक्षित हैं। वे ही सर्वात्मा भगवान् विश्वका संहार करते हैं और जिसका संहार होता है, वह विश्व भी वे ही हैं।'

होनेपर दूरी, भेद तथा भिन्नता मिट जाती है और साधक साध्यमें लीन हो जाता है।

(३)

सब कुछ भगवान् ही हैं—यह गीताका सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है और इसका अनुभव करनेवालेको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ महात्मा कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌ने कहा है—

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥

(११। २९। १९)

'मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें मैं सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें, मन, वाणी तथा शरीरके बर्तावमें मेरी ही भावना की जाय।'

उपनिषदोंमें इस बातको समझनेके लिये तीन

दृष्टान्त दिये गये हैं—सोनेका, लोहेका और मिट्टीका। जैसे सोनेके अनेक गहने होते हैं। उन गहनोंकी आकृति, नाम, रूप, तौल, उपयोग, मूल्य आदि अलग-अलग होनेपर भी उनमें सोना एक ही होता है। लोहेके अनेक अस्त्र-शस्त्र होते हैं, पर उनमें लोहा एक ही होता है। मिट्टीके अनेक बर्तन होते हैं, पर उनमें मिट्टी एक ही होती है। ऐसे ही भगवान्‌से उत्पन्न हुई सृष्टिमें अनेक प्राणी, पदार्थ आदि होनेपर भी उनमें भगवान् एक ही हैं।

सोनेसे बने हुए गहनोंमें सोना प्रत्यक्ष दीखता है, लोहेसे बने हुए अस्त्र-शस्त्रोंमें लोहा प्रत्यक्ष दीखता है और मिट्टीसे बने हुए बर्तनोंमें मिट्टी प्रत्यक्ष दीखती है; परन्तु परमात्मासे बने हुए संसारमें परमात्मा प्रत्यक्ष नहीं दीखते। इसलिये सब कुछ परमात्मा ही हैं—इस बातको समझनेके लिये गेहूँके खेतका दृष्टान्त दिया जाता है।

किसानलोग गेहूँकी हरी-भरी खेतीको भी

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता ७। १२)

'जितने भी सात्त्विक भाव हैं और जितने भी राजस तथा तामस भाव हैं, वे सब मुझमें ही रहते हैं—ऐसा समझो। परन्तु मैं उनमें और वे मुझमें नहीं हैं।'

'**न त्वहं तेषु ते मयि**' कहनेका तात्पर्य है कि तुम गुणोंमें उलझो मत। भगवान् तो सबमें ही हैं। वे गुणोंमें भी हैं। पर गुणोंमें उलझनेसे हम उनसे दूर हो जाते हैं। यदि हम भगवान्‌को सत्ता और महत्ता न देकर गुणोंको सत्ता और महत्ता देंगे तो हम जन्म-मरणमें चले जायँगे—'**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**' (गीता १३। २१)। जैसे, गेहूँके खेतमें गेहूँ ही मुख्य होता है, पत्ती-डंठल नहीं। गेहूँके पौधेमें जड़ तामस है, डंठल राजस है, सिट्टा सात्त्विक है और गेहूँ (दाना) गुणातीत है। किसानका

उद्देश्य केवल गेहूँको प्राप्त करनेका ही होता है। गेहूँको प्राप्त करनेके लिये ही वह सारी मेहनत करता है, खेतीमें जल-खाद आदि डालता है। गेहूँ प्राप्त होनेके बाद उसका पत्ती-डंठलसे कोई मतलब नहीं रहता; क्योंकि उसकी दृष्टिमें पत्ती-डंठलका कोई महत्त्व नहीं है। इसी तरह साधकका उद्देश्य भी केवल भगवान्‌का ही होता है, सात्त्विक-राजस-तामस तीनों गुणोंका नहीं। जैसे गेहूँसे पैदा होनेपर भी पत्ती-डंठलसे किसानका कोई प्रयोजन नहीं होता, ऐसे ही भगवान्‌से उत्पन्न होनेपर भी सात्त्विक-राजस-तामस भावोंसे साधकका कोई प्रयोजन नहीं होता।

जैसे बालक मिट्टीका खिलौना चाहता है तो पिताजी रुपये खर्च करके भी उसके लिये मिट्टीका खिलौना लाकर देते हैं। ऐसे ही हम संसारको चाहते हैं तो भगवान् संसाररूपमें हमारे सामने आ जाते हैं। हम शरीर बनते हैं तो भगवान् विश्व बन

जाते हैं। शरीर बननेके बाद फिर विश्वसे भिन्न कुछ भी जाननेमें नहीं आता—यह नियम है।

सब कुछ भगवान् हैं—इसका चिन्तन नहीं करना है, प्रत्युत इसको स्वयंसे स्वीकार करना है। स्वीकार करते ही हमारी दृष्टि बदल जायगी। दृष्टिमें ही सृष्टि है। हमारी दृष्टि बदलेगी तो सारी सृष्टि बदल जायगी! इसलिये अपनी दृष्टि ऐसी बनाओ कि सब रूपोंमें भगवान् ही दीखने लग जायँ। यही सच्ची आस्तिकता है।

भक्तराज ध्रुव कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्मि तम्॥

(विष्णुपुराण १। १२। ५१)

'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल प्रकृति—ये सब जिनके रूप हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ।'

अगर हमारे भीतर राग-द्वेष होते हैं तो हमने

'सब कुछ भगवान् हैं'—यह बुद्धिसे सीखा है, स्वयंसे स्वीकार नहीं किया है। बुद्धिसे सीखनेपर कल्याण नहीं होता, प्रत्युत स्वयंसे स्वीकार करनेपर कल्याण होता है। जब सब कुछ भगवान् ही हैं तो फिर राग-द्वेष कौन करे और किससे करे?

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(मानस, उत्तर० ११२ ख)

(५)

शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसे जो भी सात्त्विक, राजस और तामस भाव, क्रिया, पदार्थ आदि ग्रहण किये जाते हैं, वे सब भगवान् ही हैं। मनकी स्फुरणामात्र भगवान् ही हैं। संसारमें अच्छा-बुरा, शुद्ध-अशुद्ध, शत्रु-मित्र, दुष्ट-सज्जन, पापात्मा-पुण्यात्मा आदि जो कुछ भी देखने, सुनने, कहने, सोचने, समझने आदिमें आता है, वह सब-का-सब केवल भगवान् ही हैं। शरीर-शरीरी, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, अपरा-परा, क्षर-अक्षर आदि सब केवल भगवान् ही हैं। जब सब कुछ

भगवान् ही हैं तो फिर उसमें 'मैं' कहाँसे आये? 'मैं' है ही नहीं, केवल तू-ही-तू है—

तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखूँ तित तू॥

अब भगवान्‌की प्राप्तिमें देरी किस बातकी है? भगवत्प्राप्ति तत्काल होनेवाली वस्तु है। मान लो कि हम एक नदीको देख रहे हैं। किसी जानकार व्यक्तिने हमारेसे कहा कि यह नदी गंगाजी हैं। यह सुनते ही हमारी भावना बदल गयी, दृष्टि बदल गयी। इसमें देरी क्या लगी? परिश्रम (अभ्यास) क्या करना पड़ा? किस क्रिया और पदार्थकी आवश्यकता पड़ी? सब कुछ भगवान् ही हैं—इस वास्तविक बातको स्वीकार करनेके लिये न कोई ग्रन्थ पढ़ना है, न कोई ध्यान करना है, न कोई चिन्तन करना है, न श्रवण-मनन-निदिध्यासन करना है, न आँख मीचनी है, न कान मूँदने हैं, न नाक दबानी है, न जंगलमें जाना

है, न गुफामें जाना है, न हिमालयमें जाना है! अपनी सत्ताको भी अलग न रखकर भगवान्‌में मिला देना है। 'मैं' और 'मेरा' को छोड़कर 'तू' और 'तेरा' को स्वीकार करना है। फिर 'तेरा' भी न रहे, प्रत्युत तू-ही-तू रह जाय। 'मैं' की जगह भी केवल भगवान् ही रह जायँ!

यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु सब समयमें मौजूद होती है, उसकी प्राप्तिके लिये भविष्यकी अपेक्षा नहीं होती और जो वस्तु सब जगह मौजूद होती है, उसकी प्राप्ति किसी क्रिया तथा पदार्थसे नहीं होती। कहीं जानेसे जो परमात्मा मिलेंगे, वे ही परमात्मा जहाँ हम हैं, वहाँ पूरे-के-पूरे हैं। कहीं जानेकी, कुछ बदलनेकी जरूरत नहीं है। केवल मन बदलनेकी जरूरत है। उनकी प्राप्तिकी सच्ची चाहना होनी चाहिये। उनकी प्राप्ति केवल इच्छामात्रसे होती है। जो केवल परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसको तत्काल प्राप्ति होती है।

देरी उसको लगती है, जिसको इच्छाकी कमीके कारण देरी सह्य है।

जो वस्तु दूर हो, उसकी प्राप्तिके लिये मार्ग होता है। जो वस्तु सर्वव्यापक हो, सब जगह परिपूर्ण हो, उसकी प्राप्तिके लिये मार्ग नहीं होता। उसकी प्राप्ति केवल चाहनासे होती है। चाहनामात्रसे केवल परमात्मा ही मिलते हैं और कोई वस्तु नहीं मिलती। परमात्मा अद्वितीय हैं तो उनकी चाहना भी अद्वितीय होनी चाहिये। संसारकी प्राप्ति चाहनामात्रसे नहीं होती। संसारकी प्राप्ति 'करने' से होती है, परमात्माकी प्राप्ति 'न करने' से होती है।

मूलमें साधकके भीतर परमात्माकी लालसा होनी चाहिये। अगर भीतरसे संसार अच्छा लगता है, संसारकी लालसा है तो परमात्मप्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे जिसके भीतर प्यास होती है, उसीको जल दीखता है, ऐसे ही जिसके भीतर संसारकी प्यास (लालसा) है, उसको संसार

दीखता है और जिसके भीतर परमात्माकी प्यास है, उसको परमात्मा दीखते हैं। प्यास न हो तो वस्तु सामने रहते हुए भी नहीं दीखती। परमात्माकी प्यास हो तो जगत् लुप्त हो जाता है और जगत्की प्यास हो तो परमात्मा लुप्त हो जाते हैं। जिसके भीतर जगत्की प्यास है, वह जगत्का निर्माण कर लेता है—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५) और जिसके भीतर परमात्माकी प्यास है, वह परमात्माकी खोज कर लेता है—'**ततः पदं तत्परिमार्गितव्यम्**' (गीता १५। ४)। जगत्की प्यास होनेसे जगत् न होते हुए भी मृगमरीचिकाकी तरह दीखने लग जाता है और परमात्माकी प्यास होनेसे परमात्मा न दीखनेपर भी दीखने लग जाता है। परमात्माकी प्यास जाग्रत् होनेपर साधकको भूतकालका चिन्तन नहीं होता, भविष्यकी आशा नहीं रहती और वर्तमानमें उसको प्राप्त किये बिना चैन नहीं पड़ता।

(६)

अपरा, परा और परमात्मा—इन तीनोंमें अपरा और परा तो जाननेका विषय है, पर परमात्मा जाननेका विषय नहीं हैं, प्रत्युत माननेका विषय हैं। उनको माना ही जा सकता है, जाना नहीं जा सकता। रचना अपने रचयिताको कैसे जान सकती है? कार्य अपने कारणको कैसे जान सकता है? इसलिये गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन॥

(७। २६)

'हे अर्जुन! जो प्राणी भूतकालमें हो चुके हैं तथा जो वर्तमानमें हैं और जो भविष्यमें होंगे, उन सब प्राणियोंको तो मैं जानता हूँ, पर मुझे कोई भी नहीं जानता।'

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥

(१०। २)

'मेरे प्रकट होनेको न देवता जानते हैं और न महर्षि; क्योंकि मैं सब प्रकारसे देवताओं और महर्षियोंका आदि हूँ।'

जैसे अपने माता-पिताको हम जान नहीं सकते, प्रत्युत मान ही सकते हैं; क्योंकि जन्म लेते समय हमने उनको देखा ही नहीं, देखना सम्भव ही नहीं। ऐसे ही परमात्माको भी हम जान नहीं सकते, प्रत्युत मान ही सकते हैं। माताकी अपेक्षा भी पिताको जानना सर्वथा असम्भव है; क्योंकि मातासे जन्म लेते समय तो हमारा शरीर बन चुका था, पर पितासे जन्म लेते समय हमारी (शरीरकी) सत्ता ही नहीं थी! भगवान् सम्पूर्ण संसारके पिता हैं—'**अहं बीजप्रदः पिता**' (गीता १४।४), '**पिताहमस्य जगतः**' (गीता ९।१७), '**पितासि लोकस्य चराचरस्य**' (गीता ११।४३), '**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७)। इसलिये परमात्माको माना ही जा सकता है। उनको जानना सर्वथा असम्भव है। जैसे,

माता-पिताको माने बिना हम रह सकते ही नहीं। अगर हम अपनी (शरीरकी) सत्ता मानते हैं तो माता-पिताकी सत्ता माननी ही पड़ेगी। ऐसे ही परमात्माको माने बिना हम रह सकते ही नहीं। अगर हम अपनी सत्ता (होनापन) मानते हैं तो परमात्माकी सत्ता माननी ही पड़ेगी। कारणके बिना कार्य कहाँसे आया? परमात्माके बिना हम स्वयं कहाँसे आये? जैसे 'हम नहीं हैं'—इस तरह अपने होनेपनका कोई निषेध या खण्डन नहीं कर सकता, ऐसे ही 'परमात्मा नहीं हैं'—इस तरह परमात्माके होनेपनका भी कोई निषेध या खण्डन नहीं कर सकता।

सब कुछ भगवान् ही हैं—यह मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते; क्योंकि यह समझके अन्तर्गत नहीं आता, प्रत्युत समझ (बुद्धि) इसके अन्तर्गत आती है।

(७)

सब कुछ भगवान् ही हैं—इसका अनुभव

करनेके तीन चरण हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. सब कुछ भगवान्‌का ही है।

२. सब कुछ भगवान् ही हैं।

३. भगवान्‌के सिवाय कभी कुछ हुआ ही नहीं।

देखने-सुननेमें जो कुछ आता है, वह सब मिलने और बिछुड़नेवाला है। जो मिला है, वह बिछुड़ जायगा—इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी कोई वस्तु भी हमारी नहीं है। जो कुछ देखने-सुननेमें आता है, वह सब अपरा प्रकृति है, जो भगवान्‌की है। भगवान्‌ने अपरा प्रकृतिको भी 'मेरी प्रकृति' कहा है—'**अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा**' (गीता ७। ४) और परा प्रकृतिको भी 'मेरी प्रकृति' कहा है—'**प्रकृतिं विद्धि मे पराम्**' (गीता ७। ५)। फिर हमारी क्या वस्तु हुई? सब कुछ भगवान्‌का ही हुआ! अतः जो कुछ दीखता है, वह हमारा नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌का है—यह दृढ़तासे

स्वीकार कर लें तो हमारा साधन शुरू हो जायगा। जबतक हम मिले हुएको अपना मानते रहेंगे, तबतक साधन शुरू नहीं होगा। मिले हुएको अपना मानते रहनेसे न तो विवेक दृढ़ होता है और न विश्वास ही दृढ़ होता है। इसलिये सन्तोंने, भक्तोंने कभी संसारको अपना नहीं माना, प्रत्युत केवल भगवान्‌को ही अपना माना—*'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'*। 'मैं' भी हमारा नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌का ही है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण आदि सब भगवान्‌के ही हैं।

मेरा कुछ नहीं है, सब कुछ भगवान्‌का ही है—इस सत्यकी स्वीकृति होते ही 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—यह सत्य प्रकट हो जायगा। कारण कि यह जगत् केवल जीवकी कल्पना है। जगत् न तो महात्माकी दृष्टिमें है और न परमात्माकी दृष्टिमें है, प्रत्युत जीवात्माकी दृष्टिमें है। महात्माकी दृष्टिमें सब कुछ भगवान् ही हैं—

‘**वासुदेवः सर्वम्**’ (गीता ७।१९)। भगवान्‌की दृष्टिमें सत्-असत् सब कुछ वे ही हैं—‘**सदसच्चाहमर्जुन**’ (गीता ९।१९)। परन्तु जीवने अपने राग-द्वेषके कारण जगत्‌को अपनी बुद्धिमें धारण कर रखा है—‘**ययेदं धार्यते जगत्**’ (गीता ७।५)। वास्तवमें जगत्‌का नामोनिशान भी नहीं है। सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, घटना, परिस्थिति आदिमें केवल भगवान्-ही-भगवान् परिपूर्ण हैं। अगर यह बात हमारी समझमें नहीं आती तो हमारी समझमें कमी है, तत्त्वमें कमी नहीं है। भले ही हमारी समझमें न आये, पर सच्ची बात सच्ची ही रहेगी, झूठी कैसे हो जायगी? साधक कुछ भी करे, अन्तमें उसे सच्ची बातको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

‘**वासुदेवः सर्वम्**’ का अनुभव होनेके बाद फिर ‘**सर्वम्**’ भी नहीं रहता, प्रत्युत केवल ‘**वासुदेवः**’ रह जाता है। इसीको श्रीमद्भागवतमें ‘आत्यन्तिक

भगवान् ही हैं तो फिर उसमें 'मैं' कहाँसे आये? 'मैं' है ही नहीं, केवल तू-ही-तू है—

तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखूँ तित तू॥

अब भगवान्‌की प्राप्तिमें देरी किस बातकी है? भगवत्प्राप्ति तत्काल होनेवाली वस्तु है। मान लो कि हम एक नदीको देख रहे हैं। किसी जानकार व्यक्तिने हमारेसे कहा कि यह नदी गंगाजी हैं। यह सुनते ही हमारी भावना बदल गयी, दृष्टि बदल गयी। इसमें देरी क्या लगी? परिश्रम (अभ्यास) क्या करना पड़ा? किस क्रिया और पदार्थकी आवश्यकता पड़ी? सब कुछ भगवान् ही हैं—इस वास्तविक बातको स्वीकार करनेके लिये न कोई ग्रन्थ पढ़ना है, न कोई ध्यान करना है, न कोई चिन्तन करना है, न श्रवण-मनन-निदिध्यासन करना है, न आँख मीचनी है, न कान मूँदने हैं, न नाक दबानी है, न जंगलमें जाना

है, न गुफामें जाना है, न हिमालयमें जाना है! अपनी सत्ताको भी अलग न रखकर भगवान्‌में मिला देना है। 'मैं' और 'मेरा' को छोड़कर 'तू' और 'तेरा' को स्वीकार करना है। फिर 'तेरा' भी न रहे, प्रत्युत तू-ही-तू रह जाय। 'मैं' की जगह भी केवल भगवान् ही रह जायँ!

यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु सब समयमें मौजूद होती है, उसकी प्राप्तिके लिये भविष्यकी अपेक्षा नहीं होती और जो वस्तु सब जगह मौजूद होती है, उसकी प्राप्ति किसी क्रिया तथा पदार्थसे नहीं होती। कहीं जानेसे जो परमात्मा मिलेंगे, वे ही परमात्मा जहाँ हम हैं, वहाँ पूरे-के-पूरे हैं। कहीं जानेकी, कुछ बदलनेकी जरूरत नहीं है। केवल मन बदलनेकी जरूरत है। उनकी प्राप्तिकी सच्ची चाहना होनी चाहिये। उनकी प्राप्ति केवल इच्छामात्रसे होती है। जो केवल परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसको तत्काल प्राप्ति होती है।

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं (स्वीकृतं) द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम् ॥

(बोधसार, भक्ति० ४२)

'तत्त्वबोधसे पहलेका द्वैत तो मोहमें डालता है, पर बोध हो जानेपर भक्तिके लिये स्वीकृत द्वैत अद्वैतसे भी अधिक सुन्दर होता है।'

भगवान्‌की इच्छासे होनेवाला यह प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। इसलिये कभी भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं और कभी दो हो जाते हैं। प्रेममें यह मिलना और अलग होना (मिलन और विरह) भगवान्‌की इच्छासे ही होता है, भक्तकी इच्छासे नहीं। इस प्रेमकी माँग मुक्त महापुरुषोंमें भी देखी जाती है। कारण कि योग और बोधकी प्राप्ति होनेपर तो सूक्ष्म अहम् रहता है*, पर प्रेमकी प्राप्ति होनेपर इस सूक्ष्म अहम्‌का भी सर्वथा अभाव हो जाता है। तभी कहा है—

* यह सूक्ष्म अहम् जन्म-मरण देनेवाला तो नहीं होता,

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

उपसंहार

यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है— '**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य**' (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। एक परमात्मा ही अनेकरूप बन जाते हैं और फिर अनेकरूपका त्याग करके एकरूप हो जाते हैं। अनेकरूपसे होनेपर भी वे एक ही रहते हैं। वे एक रहें या अनेक हो जायँ, यह उनकी मरजी है, उनकी लीला है। एक सोनेके सैकड़ों गहने बन जायँ और फिर गहने पुनः सोना हो जायँ अथवा एक खाँड़के सैकड़ों खिलौने बन जायँ और फिर खिलौने पुनः खाँड़ हो जायँ, फर्क क्या पड़ा? ऐसे ही भगवान् कुछ भी बन जायँ, फर्क क्या पड़ा? तत्त्व एक ही

पर मतभेद पैदा करनेवाला होता है। इस सूक्ष्म अहम्‌के कारण ही आचार्योंमें तथा उनके दर्शनोंमें मतभेद रहता है।

है और एक ही रहेगा। उस एक तत्त्वके सिवाय कभी कुछ हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता ही नहीं। एकमात्र भगवान् ही थे, भगवान् ही हैं और भगवान् ही रहेंगे। वे एक ही भगवान् प्रेमी और प्रेमास्पदका रूप धारण करके प्रेमकी लीला करते हैं। उस प्रतिक्षण वर्धमान परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता है।

भगवान् आज ही मिल सकते हैं

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। इतना सुगम दूसरा कोई काम नहीं है। परन्तु केवल परमात्माकी ही चाहना रहे, साथमें दूसरी कोई भी चाहना न रहे। कारण कि परमात्माके समान दूसरा कोई है ही नहीं।* जैसे परमात्मा अनन्य हैं, ऐसे ही उनकी चाहना भी अनन्य होनी चाहिये। सांसारिक भोगोंके प्राप्त होनेमें तीन बातें होनी जरूरी हैं—इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध। पहले तो सांसारिक वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्तिके लिये कर्म करना चाहिये। कर्म करनेपर भी उसकी प्राप्ति तब होगी, जब उसके

---

* न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥ (गीता ११। ४३)

'हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकीमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर आपसे अधिक तो हो ही कैसे सकता है!'

मिलनेका प्रारब्ध होगा। अगर प्रारब्ध नहीं होगा तो इच्छा रखते हुए और उद्योग करते हुए भी वस्तु नहीं मिलेगी। इसलिये उद्योग तो करते हैं नफेके लिये, पर लग जाता है घाटा! परन्तु परमात्माकी प्राप्ति इच्छामात्रसे होती है। उसमें उद्योग और प्रारब्धकी जरूरत नहीं है। परमात्माके मार्गमें घाटा कभी होता ही नहीं, नफा-ही-नफा होता है।

एक परमात्माके सिवाय कोई भी चीज इच्छामात्रसे नहीं मिलती। कारण यह है कि मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। अपनी प्राप्तिका उद्देश्य रखकर ही भगवान्ने हमारेको मनुष्यशरीर दिया है। दूसरी बात, परमात्मा सब जगह हैं। सूईकी तीखी नोक टिक जाय, इतनी जगह भी भगवान्से खाली नहीं है। अतः उनकी प्राप्तिमें उद्योग और प्रारब्धका काम ही नहीं है। कर्मोंसे वह चीज मिलती है, जो नाशवान्

होती है। अविनाशी परमात्मा कर्मोंसे नहीं मिलते। उनकी प्राप्ति उत्कट इच्छामात्रसे होती है।

पुरुष हो या स्त्री हो, साधु हो या गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो या अपढ़ हो, बालक हो या जवान हो, कैसा ही क्यों न हो, वह इच्छामात्रसे परमात्माको प्राप्त कर सकता है। परमात्माके सिवाय न जीनेकी चाहना हो, न मरनेकी चाहना हो, न भोगोंकी चाहना हो, न संग्रहकी चाहना हो। वस्तुओंकी चाहना न होनेसे वस्तुओंका अभाव नहीं हो जायगा। जो हमारे प्रारब्धमें लिखा है, वह हमारेको मिलेगा ही। जो चीज हमारे भाग्यमें लिखी है, उसको दूसरा नहीं ले सकता— **'यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्'**। हमारेको आनेवाला बुखार दूसरेको कैसे आयेगा? ऐसे ही हमारे प्रारब्धमें धन लिखा है तो जरूर आयेगा। परन्तु परमात्माकी प्राप्तिमें प्रारब्ध नहीं है।

परमात्मा किसी मूल्यके बदले नहीं मिलते।

मूल्यसे वही वस्तु मिलती है, जो मूल्यसे छोटी होती है। बाजारमें किसी वस्तुके जितने रुपये लगते हैं, वह वस्तु उतने रुपयोंकी नहीं होती। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु (क्रिया और पदार्थ) है ही नहीं, जिससे परमात्माको प्राप्त किया जा सके। वह परमात्मा अद्वितीय है, सदैव है, समर्थ है, सब समयमें है और सब जगह है। वह हमारा है और हमारेमें है—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५), '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' (गीता १८। ६१)। वह हमारेसे दूर नहीं है। हम चौरासी लाख योनियोंमें चले जायँ तो भी भगवान् हमारे हृदयमें रहेंगे। स्वर्ग या नरकमें चले जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। पशु-पक्षी या वृक्ष आदि बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। देवता बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त बन जायँ तो भी वे हमारे हृदयमें रहेंगे। दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापी, अन्यायी-

से-अन्यायी बन जायँ तो भी वे भगवान् हमारे हृदयमें रहेंगे। ऐसे सबके हृदयमें रहनेवाले भगवान्‌की प्राप्ति क्या कठिन होगी? पर जीनेकी इच्छा, मानकी इच्छा, बड़ाईकी इच्छा, सुखकी इच्छा, भोगकी इच्छा आदि दूसरी इच्छाएँ साथमें रहते हुए भगवान् नहीं मिलते। कारण कि भगवान्‌के समान तो भगवान् ही हैं। उनके समान दूसरा कोई था ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं, फिर वे कैसे मिलेंगे? केवल भगवान्‌की चाहना होनेसे ही वे मिलेंगे। अविनाशी भगवान्‌के सामने नाशवान्‌की क्या कीमत है? क्या नाशवान् क्रिया और पदार्थके द्वारा वे मिल सकते हैं? नहीं मिल सकते। जब साधक भगवान्‌से मिले बिना नहीं रह सकते, तब भगवान् भी उससे मिले बिना नहीं रहते; क्योंकि भगवान्‌का स्वभाव है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण

लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

मान लें कि कोई मच्छर गरुड़जीसे मिलना चाहे और गरुड़जी भी उससे मिलना चाहें तो पहले मच्छर गरुड़जीके पास पहुँचेगा या गरुड़जी मच्छरके पास पहुँचेंगे? गरुड़जीसे मिलनेमें मच्छरकी ताकत काम नहीं करेगी। इसमें तो गरुड़जीकी ताकत ही काम करेगी। इसी तरह परमात्मप्राप्तिकी इच्छा हो तो परमात्माकी ताकत ही काम करेगी। इसमें हमारी ताकत, हमारे कर्म, हमारा प्रारब्ध काम नहीं करेगा, प्रत्युत हमारी चाहना ही काम करेगी। हमारी चाहनाके बिना और किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है।

हम तो भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकते तो क्या भगवान् भी हमारे पास नहीं पहुँच सकते? हम कितना ही जोर लगायें, पर भगवान्‌के पास नहीं पहुँच सकते। परन्तु भगवान् तो हमारे हृदयमें ही विराजमान हैं! हम भगवान्‌को दूर मानते हैं,

इसलिये भगवान् हमसे दूर होते हैं। द्रौपदीने भगवान्‌को '**गोविन्द द्वारकावासिन्**' कहकर पुकारा तो भगवान्‌को द्वारका जाकर आना पड़ा। वह यहाँ कहती तो वे चट यहीं प्रकट हो जाते! अगर हम ऐसा मानते हैं कि भगवान् अभी नहीं मिलेंगे तो वे नहीं मिलेंगे; क्योंकि हमने आड़ लगा दी।

गोरखपुरकी एक घटना है। संवत् २००० से पहलेकी बात है। मैं गोरखपुरमें व्याख्यान देता था। वहाँ सेवारामजी नामके एक सज्जन थे, जो बैंकमें काम करते थे। एक दिन मैंने व्याख्यानमें कह दिया कि अगर आपका दृढ़ विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! उन सज्जनको यह बात लग गयी। उन्होंने विचार कर लिया कि हमें तो आज ही भगवान्‌से मिलना है। वे पुष्पमाला, चन्दन आदि ले आये कि भगवान् आयेंगे तो उनको माला पहनाऊँगा, चन्दन चढ़ाऊँगा! वे कमरा बन्द करके भगवान्‌के

आनेकी प्रतीक्षामें बैठ गये। समयपर भगवान्‌के आनेकी सम्भावना भी हो गयी और सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् प्रकट नहीं हुए। दूसरे दिन उन्होंने मेरेसे कहा कि आज आप मेरे घरसे भिक्षा लें। मैं कई घरोंसे भिक्षा लेकर पाता था। उस दिन उनके घर गया तो उन्होंने मेरेसे पूछा कि भगवान् मिलनेवाले थे, सुगन्ध भी आ गयी थी, फिर बाधा क्या लगी कि वे मिले नहीं? मैंने कहा कि भाई! मेरेको इसका क्या पता? परन्तु मैं तुम्हारेसे पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मनमें यह बात आती थी कि इतनी जल्दी भगवान् कैसे मिलेंगे? वे बोले कि यह बात तो आती थी! मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर मनमें यह बात होती कि भगवान् मेरेको अवश्य मिलेंगे, उनको मिलना ही पड़ेगा तो वे जरूर मिलते। भगवान् ऐसे कैसे जल्दी मिलेंगे—ऐसा भाव करके तुमने ही बाधा लगायी है।

अगर आप विचार कर लें कि भगवान् आज

मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! परन्तु मनमें यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे? भगवान् आपके कर्मोंसे अटकते नहीं। अगर आपके दुष्कर्मसे, पापकर्मसे भगवान् अटक जायँ तो वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? परन्तु भगवान् किसी कर्मसे अटकते नहीं। ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो भगवान्‌को मिलनेसे रोक दे। वे न तो पापकर्मोंसे अटकते हैं, न पुण्यकर्मोंसे अटकते हैं। वे सबके लिये सुलभ हैं। अगर भगवान् हमारे पापोंसे अटक जायँ तो हमारे पाप भगवान्‌से भी प्रबल हुए! अगर पाप प्रबल (बलवान्) हैं तो भगवान् मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? जो पापोंसे ही अटक जाय, उसके मिलनेसे क्या लाभ? परन्तु भगवान् इतने निर्बल नहीं हैं, जो पापोंसे अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता ही नहीं। आपकी जोरदार इच्छा हो जाय तो आप कैसे ही हों,

भगवान् तो मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! उनको मिलना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही तो मानवजन्म मिला है, नहीं तो पशुमें और मनुष्यमें क्या फर्क हुआ?

खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः।
तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥
सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअन में चार।
तुलसी हरि की भगति बिनु, ऐसे ही नर नार॥

देवता भोगयोनि है। वे भी चाहते हैं कि भगवान् हमारेको मिलें—'**देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः**' (गीता ११। ५२)। वे भगवान्‌को चाहते तो हैं, पर भोगोंकी इच्छाको नहीं छोड़ते। यही दशा मनुष्योंकी है। अगर आप हृदयसे भगवान्‌को चाहो तो उनको मिलना ही पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है। पर आप ही बाधा लगा दो कि भगवान् नहीं मिलेंगे, तो फिर वे नहीं मिलेंगे! गीतामें साफ लिखा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९।३०-३१)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्य भक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर रहनेवाली शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन! मेरे भक्तका पतन नहीं होता—ऐसी तुम प्रतिज्ञा करो।'

तात्पर्य है कि दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि '**अनन्यभाक्**' हो जाय अर्थात् भगवान्‌के सिवाय कोई चाहना न रखे तो उसको भी साधु मान लेना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय पक्का

कर लिया है कि भगवान् जरूर मिलेंगे।

आप केवल भगवान्‌की ही इच्छा करो और कोई इच्छा मत करो। न जीनेकी इच्छा करो, न मरनेकी इच्छा करो। न मानकी इच्छा करो, न बड़ाईकी इच्छा करो। न भोगोंकी इच्छा करो, न रुपयोंकी इच्छा करो। केवल एक भगवान्‌की इच्छा करो तो वे मिल जायँगे। कम-से-कम मेरी बातकी परीक्षा तो करके देखो! भगवान् आपको मिलते नहीं; क्योंकि आप उनको चाहते नहीं। आपके भीतर रुपयोंकी चाहना हो तो भगवान् बीचमें कूदकर क्यों पड़ेंगे? संसारमें सबसे रद्दी वस्तु रुपया है। रुपयोंसे रद्दी चीज दूसरी कोई है ही नहीं। ऐसी रद्दी चीजमें आपका मन अटका हुआ हो तो भगवान् कैसे मिलेंगे? रुपये देकर आप भोजन, वस्त्र, सवारी आदि खरीद सकते हो, पर रुपया खुद न तो खानेके काम आता है, न पहननेके काम आता है, न सवारीके काम आता है। तात्पर्य है कि रुपये

काम नहीं आते, प्रत्युत उनका खर्च काम आता है।

परमात्मा इच्छामात्रसे मिलते हैं। उनको रोकनेकी ताकत किसीमें भी नहीं है। छोटा बालक रोता है तो माँ आ ही जाती है। बालक घरका कुछ भी काम नहीं करता, उलटे काम करनेमें आपको बाधा लगाता है, पर जब वह रोने लगता है, तब सब घरवाले उसके पक्षमें हो जाते हैं। सास-ससुर, देवर-जेठ सभी कहते हैं कि बहू! बालक रो रहा है, उसको उठा ले। माँको सब काम छोड़कर बालकको उठाना पड़ता है। बालकका एकमात्र बल रोना ही है—**'बालानां रोदनं बलम्'**। रोनेमें बड़ी ताकत है। आप सच्चे हृदयसे व्याकुल होकर भगवान्‌के लिये रोने लग जाओ तो जितने भगवान्‌के भक्त हुए हैं, सन्त-महात्मा हुए हैं, वे सब-के-सब आपके पक्षमें हो जायँगे और भगवान्‌को उलाहना देंगे कि आप मिलते क्यों नहीं? वे ही भगवान्‌के सास-ससुर आदि हैं!

वास्तवमें भगवान् मिले हुए ही हैं। आपकी

सांसारिक इच्छा ही उनको रोक रही है। आप रुपयोंकी इच्छा करते हो, भोगोंकी इच्छा करते हो तो भगवान् उनको जबर्दस्ती नहीं छुड़ाते। अगर आप सांसारिक इच्छाएँ छोड़कर केवल भगवान्को ही चाहो तो आपको कौन रोक सकता है ? आपको बाधा देनेकी किसीकी ताकत नहीं है। अगर आप भगवान्के लिये व्याकुल हो जाओ तो भगवान् भी व्याकुल हो जायँगे। आप संसारके लिये व्याकुल हो जाओ तो संसार व्याकुल नहीं होगा। आप संसारके लिये रोओ तो संसार राजी नहीं होगा। पर भगवान्के लिये रोओ तो वे भी रो पड़ेंगे।

बालक सच्चा रोता है या झूठा, यह माँ ही समझती है। बालकके आँसू तो आये नहीं, केवल ऊँ-ऊँ करता है तो माँ समझ लेती है कि यह ठगाई करता है! अगर बालक सच्चाईसे रो पड़े, उसके साँस ऊँचे चढ़ जायँ तो माँ सब काम भूल जायगी और चट उसको उठा लेगी। अगर माँ उस बालकके पास न जाय तो उस माँको मर जाना चाहिये! उसके

जीनेका क्या लाभ! ऐसे ही सच्चे हृदयसे चाहनेवालेको भगवान् न मिलें तो भगवान्‌को मर जाना चाहिये!

एक साधु थे। उनके पास एक आदमी आया और उसने पूछा कि भगवान् जल्दी कैसे मिलें? साधुने कहा कि भगवान् उत्कट चाहना होनेसे मिलेंगे। उसने पूछा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? साधुने कहा कि भगवान्‌के बिना रहा न जाय। वह आदमी ठीक समझा नहीं और बार-बार पूछता रहा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? एक दिन साधुने उस आदमीसे कहा कि आज तुम मेरे साथ नदीमें स्नान करने चलो। दोनों नदीमें गये और स्नान करने लगे। उस आदमीने जैसे ही नदीमें डुबकी लगायी, साधुने उसका गला पकड़कर नीचे दबा दिया। वह आदमी थोड़ी देर नदीके भीतर छटपटाया, फिर साधुने उसको छोड़ दिया। पानीसे ऊपर आनेपर वह बोला कि तुम साधु होकर ऐसा काम करते हो! मैं तो आज मर जाता! साधुने पूछा कि बता, तेरेको

क्या याद आया? माँ याद आयी, बाप याद आया, धन याद आया या स्त्री-पुत्र याद आये? वह बोला कि महाराज, मेरे तो प्राण निकले जा रहे थे, याद किसकी आती? साधु बोले कि तुम पूछते थे कि उत्कट अभिलाषा कैसी होती है, उसीका नमूना मैंने तेरेको बताया है। जब एक भगवान्‌के सिवाय कोई भी याद नहीं आयेगा और उनकी प्राप्तिके बिना रह नहीं सकोगे, तब भगवान् मिल जायँगे। भगवान्‌की ताकत नहीं है कि मिले बिना रह जायँ।

भगवान् कर्मोंसे नहीं मिलते। कर्मोंसे मिलनेवाली चीज नाशवान् होती है। कर्मोंसे धन, मान, आदर, सत्कार मिलता है। परमात्मा अविनाशी हैं। वे कर्मोंका फल नहीं हैं, प्रत्युत आपकी चाहनाका फल है। परन्तु आपको परमात्माके मिलनेकी परवाह ही नहीं है, फिर वे कैसे मिलेंगे? भगवान् मानो कहते हैं कि मेरे बिना तेरा काम चलता है तो मेरा भी तेरे बिना काम चलता है। मेरे बिना

तेरा काम अटकता है तो मेरा काम भी तेरे बिना अटकता है। तू मेरे बिना नहीं रह सकता तो मैं भी तेरे बिना नहीं रह सकता।

आपमें परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा है ही नहीं। आप सत्संग करते हो तो लाभ जरूर होगा। जितना सत्संग करोगे, विचार करोगे, उतना लाभ होगा—इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु परमात्माकी प्राप्ति जल्दी नहीं होगी। कई जन्म लग जायँगे, तब उनकी प्राप्ति होगी। अगर उनकी प्राप्तिकी जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान्‌को आना ही पड़ेगा। वे तो हरदम मिलनेके लिये तैयार हैं! जो उनको चाहता है, उसको वे नहीं मिलेंगे तो फिर किसको मिलेंगे? इसलिये 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए सच्चे हृदयसे उनको पुकारो।

सच्चे हृदयसे प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है॥

भक्त सच्चे हृदयसे प्रार्थना करता है तो

भगवान्‌को आना ही पड़ता है। किसीकी ताकत नहीं जो भगवान्‌को रोक दे। जिसके भीतर एक भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है, न जीनेकी इच्छा है, न मरनेकी इच्छा है, न मानकी इच्छा है, न सत्कारकी इच्छा है, न आदरकी इच्छा है, न रुपयोंकी इच्छा है, न कुटुम्बकी इच्छा है, उसको भगवान् नहीं मिलेंगे तो क्या मिलेगा? आप पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढ़े-लिखे हैं या अपढ़ हैं, इस बातको भगवान् नहीं देखते। वे तो केवल आपके हृदयका भाव देखते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

वे हृदयकी बातको याद रखते हैं, पहले किये पापोंको याद रखते ही नहीं! भगवान्‌का अन्तःकरण ऐसा है, जिसमें आपके पाप छपते ही नहीं! केवल आपकी अनन्य लालसा छपती है। भगवान् कैसे

मिलें ? कैसे मिलें ? ऐसी अनन्य लालसा हो जायगी तो भगवान् जरूर मिलेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। आप और कोई इच्छा न करके, केवल भगवान्की इच्छा करके देखो कि वे मिलते हैं कि नहीं मिलते हैं ! आप करके देखो तो मेरी भी परीक्षा हो जायगी कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं ! मैं तो गीताके बलपर कहता हूँ। गीतामें भगवान्ने कहा है—‘**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**’ (४। ११) ‘जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।’ हमें भगवान्के बिना चैन नहीं पड़ेगा तो भगवान्को भी हमारे बिना चैन नहीं पड़ेगा। हम भगवान्के बिना रोते हैं तो भगवान् भी हमारे बिना रोने लग जायँगे ! भगवान्के समान सुलभ कोई है ही नहीं ! भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

कर लेता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं—

आदि अन्त जन अनँत के, सारे कारज सोय।
जेहि जिव उर नहचो धरै, तेहि ढिग परगट होय॥

प्रह्लादजीके लिये भगवान् खम्भेमेंसे प्रकट हो गये—

प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥

(कवितावली ७। १२७)

भगवान् सबके परम सुहृद् हैं। वे पापी, दुराचारीको जल्दी मिलते हैं। माँ कमजोर बालकको जल्दी मिलती है। एक माँके दो बेटे हैं। एक बेटा तो समयपर भोजन कर लेता है, फिर कुछ नहीं लेता और दूसरा बेटा दिनभर खाता रहता है। दोनों बेटे भोजनके लिये बैठ जायँ तो माँ पहले उसको रोटी देगी जो समयपर भोजन करता है; क्योंकि वह भूखा उठ जायगा तो शामतक खायेगा नहीं। दूसरे बेटेको माँ कहती है कि तू ठहर जा; क्योंकि

वह तो बकरीकी तरह दिनभर चरता रहता है। दोनों एक ही माँके बेटे हैं, फिर भी माँ पक्षपात करती है। इसी तरह जो एक भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं चाहता, उसको भगवान् सबसे पहले मिलते हैं; क्योंकि वह भगवान्‌को अधिक प्रिय है। वह एक भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीको अपना नहीं मानता। वह भगवान्‌के लिये दुःखी होता है तो भगवान्‌से उसका दुःख सहा नहीं जाता।

कोई चार-पाँच वर्षका बालक हो और उसका माँसे झगड़ा हो जाय तो माँ उसके सामने ढीली पड़ जाती है। संसारकी लड़ाईमें तो जिसमें अधिक बल होता है, वह जीत जाता है, पर प्रेमकी लड़ाईमें जिसमें प्रेम अधिक होता है, वह हार जाता है। बेटा माँसे कहता है कि मैं तेरी गोदीमें नहीं आऊँगा, पर माँ उसकी गरज करती है कि आ जा, आ जा बेटा! माँमें यह स्नेह

भगवान्‌से ही तो आया है। भगवान् भी भक्तकी गरज करते हैं। भगवान्‌को जितनी गरज है, उतनी गरज दुनियाको नहीं है। माँको जितनी गरज होती है, उतनी बालकको नहीं होती। बालक तो माँका दूध पीते समय दाँतोंसे काट लेता है, पर माँ क्रोध नहीं करती। अगर वह क्रोध करे तो बालक जी सकता है क्या? माँ तो बालकपर कृपा ही करती है। ऐसे ही भगवान् हमारी अनन्त जन्मोंकी माता है। वे भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकते। भक्तको वे अपना मुकुटमणि मानते हैं—***'मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि'***। भक्तोंका काम करनेके लिये भगवान् हरदम तैयार रहते हैं। जैसे बच्चा माँके बिना नहीं रह सकता और माँ बच्चेके बिना नहीं रह सकती, ऐसे ही भक्त भगवान्‌के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्तके बिना नहीं रह सकते।

~~~ ○ ~~~
~~~